© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 8 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Scienceand Technology

द्वितीय नगरीकरण के संदर्भ में लोहे की भूमिका

डा0 ज़ेबा इस्लाम
प्राचीन इतिहास संस्कृति,
एवं पुरातत्व विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लोहे का आविष्कार मानव के प्रगति के विकास के इतिहास में उसकी महत्वपूर्ण उपलब्धि है । विश्व के औद्योगिक विकास का मूलाधार लोहा ही है । उत्खनन में अनेक धातुओं की तरह भारत से लोहे की सामग्रियां भी प्राप्त हुई है । लोहा एक कठोर धातु है, जिससे मनुष्य अपने लिये कठोर भूमि, वन, आक्रमक पशुओं और मनुष्यों से उत्पन्न संकट को टाल सकता था । कठोर भूमि को फाल या टुकडों की सहायता से तोड़ कर वह कृषि कार्य करने तथा इससे बनी सामग्रिया और उपकरणों द्वारा उत्पादन को विकसित करने में सहायता किया होगा । इस प्रकार सभ्यता का विकास जो प्रथम नगरीकरण के बाद थोडा रूका था वह लोहे के प्रयोग द्वारा अब नवीन गति से विकसित हुआ । सिन्धु घाटी की सभ्यता कास्यं कालीन है, और उसके बाद भारत में लौह युग का प्रारम्भ होता है ।

लौह तत्व से मनुष्य लौह युग के बहुत पहले से परिचित था । हेमेटाइट जिसमें लौह तत्व की प्रधानता है, रंग के लिये पाषाण काल से ही प्रयुक्त होता रहा है। उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार लोहे का ज्ञान किसी न किसी रूप में मेसोपोटामिया[1] में 3000 ईसा पूर्व के लगभग था, सम्भवतः उसे गलाने की तकनीक का ज्ञान भी उन्हें 2800 [2] ई0 पूर्व तक हो गया था । प्रश्न यह उठता है कि, इसका प्रंयोग सर्वप्रथम कहां हुआ था, जहां से यह किस क्रम में चलकर दूसरे देशों में पहुंचा ?

इतिहासकार आर्मेनियन [3] पहाडी में निवास करने वाली एक बर्बर जाति जो मितानी शासकों के शासित क्षेत्रों में रहती थी, को सर्वप्रथम लोहे के प्रयोग का श्रेय देते है । किन्तु हिंत्ती(1800 – 1200) ने सर्वप्रथम प्रयोग किया । परन्तु अब इस सम्बन्ध में नवीन साक्ष्यों के मिल जाने के बाद यह मत मान्य नहीं है । नोह (राजस्थान) तथा इसके दोआब क्षेत्र से लोहा (Black and redware) के साथ मिलता है जिसकी तिथि 1400 ईसा पूर्व है । कुछ स्थलों जैसे भगवानपुरा, माण्डा, दघेरी, आलमगीरपुर रोपड़

आदि से चित्रित धूसर भाण्ड सैंधव सभ्यता के पतन के साथ लगभग ई0 पूर्व 1700 मिलते है जिनका सम्बन्ध लोहे से माना गया है ।

लोहे का सर्वप्रथम प्रयोग युद्ध के निमित हुआ था, इसलिये इसकी शोधन प्रणाली को गोपनीय रखा गया था । 1200 ईसा पूर्व के आस पास हित्ती सभ्यता के पतन के बाद लौह तकनीक का प्रचार – प्रसार आस पास के क्षेत्रों में शीघ्रता के साथ फैलने लगा था इसके प्रभाव के फलस्वरूप ताम्र व कांस्यं संस्कृतियां समाप्त होने लगी । ईरान[4] में लगभग इसी समय प्रथम लोहे के प्रचलन के प्रमाण उपलब्ध हुये । उल्लेखनीय है कि थाईलैण्ड के बानैची' नामक पुरास्थल की खुदाई से स्तरीकृत संदर्भो में ढला हुआ लोहा मिलता है । जिसकी तिथि ईसा पूर्व 1600–1200 के मध्य निर्धारित की गयी । इस प्रमाण से लोहे पर हित्ती एकाधिकार की बात मिथ्या सिद्ध हो जाती है ।

ह्रीलर[5] की मान्यता है कि भारत में सर्वप्रथम लोहे का प्रचलन ईरान के हरवामनी शासकों द्वारा किया गया था । कुछ यूनानायिों को इसका श्रेय देते है । स्वयं यूनानी साहित्य इस बात की ओर इंगित करता है कि भारत वासियों को सिकन्दर के पहले से ही लोहे का ज्ञान था। भारतीय लुहार ऐसे उपकरण बनाने में निपुण थे, जिसमें कभी जंग नहीं लगता था।

श्रृग्वेद[6] भी तीरों तथा भालों की नोको एवं चर्म (कवच) का उल्लेख करता है, एक स्थान पर कवच तथा शत्रुओं से सुरक्षित लौह दुर्ग बनाने के लिये सोम का आह्वान किया गया है । गालव नामक प्रसिद्ध श्रृषि की चर्चा है, जिसने पांचाल नरेश दिवोदास को दाशराज्ञ युद्ध में लोहे की तलवारे देकर सहायता की थी । कन्नौज नरेश अष्टक का उल्लेख है, जिसने अपने पुत्र का नाम ''लौही'' रखा था।

हडप्पा सभ्यता से प्राप्त उत्तम कोटि के तांबे तथा कांसे के उपकरण और गंगा घाटी से प्राप्त तामृनिधियों व गैरिक मृदभाण्डों से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन भारतीयों को तकनीकी ज्ञान अत्यन्त विकसित था । सम्भव है, कि गंगा घाटी के तामृ धातु कर्मी ही लोहे के आविष्कारकर्ता रहे हो क्योंकि लोहे की दो बडी निधियां माण्डी (हिमाचल)[7] तथा नरनौल (पंजाब) उत्तर भारत में ही स्थित है, गोवर्धन राम शर्मा इसे चित्रित धूसर पात्र परम्परा[8] से सम्बन्धित करते हैं, जो उनके अनुसार आर्यो के साथ आई । ए0आर0 बनर्जी की मान्यता है कि चित्रित धूसर मात्र परम्परा संस्कृति के लोगों ने ही भारत में लोहे का अविष्कार किया । आद्यवैदिक काल[9] से ईसवी सन् के प्रारम्भ तक लोहे की उपलब्धता के निरन्तर प्रमाण मिलते है।

उत्तर वैदिक काल[10] के साहित्यिक साक्ष्य तथा चित्रित धूसर मृदभाण्ड संस्कृति के साक्ष्यों से प्राप्त लौह उपकरण यह संकेत देते है कि लगभग 900 ई0 पूर्व से 600 ई0 पूर्व के मध्य पशुपालक एवं खानाबदोश समाज धीरे कृषि कार्य एवं स्थायी समाज में परिवर्तित होते लगा ।

बौद्धग्रन्थ दीघनिकाय[11] में जहां एक ओर कृषकों की सहायता का उल्लेख मिलता है, वही अंगुतर निकाय में कृषि योग्य भूमि का उत्तम, मध्यम तथा निम्न कोटियों में वर्गीकरण किया गया है । पाणिनीकृत अष्टाध्यायी में लोहे के हल व फाल के लिये 'अमीविकारकुशी' शब्द का प्रयोग मिलता है । उत्खनन से एटा जनपद के जखेडा[12] से लोहे का फाल साक्ष्य प्रकाश में आया । इसी प्रकार चिंराद, रोपण[13] वैशाली तथा कौशाम्बी से भी लौह निर्मित फाल के पुरावशेष प्राप्त हुये । बौधायन में ''कौद्दलिक' शब्द आया है, 'कौददलिक' उन्हें कहा गया जो कुदाल से खेती करके अपना जीवन निर्वाह करते थे ।

उत्तर वैदिक काल में हमें इस धातु के स्पष्ट संकेत मिलते है । अथर्ववेद[14] में 'लोहायस' तथा 'श्याम अयस' शब्द मिलता है वाजसनेयी संहिता[15] में लौह तथा श्याम शब्द मिलते है । लौह' शब्द को तांबे के अर्थ में तथा श्याम को लोहे के अर्थ में ग्रहण किया गया । काठक संहिता में 24 बैलों द्वारा खींचे जाने वाले भारी हलों का उल्लेख मिलता है। इसमें अवश्य ही लोहे की फाल लगाई गयी होगी । वैदिक साहित्य [16] में अयस, श्याम, तथा लोहा शब्द मिलता है । श्रृग्वेद के परवर्ती साहित्य संहिता, बृहमण, उपनिषद आदि ग्रन्थों में अयस के पहले दो प्रकार के विश्लेषण प्रयुक्त मिलता है । 'लोहित अयस' व कृष्ण अयस' । कृष्ण अयस निश्चित रूप से लोहे के लिये प्रयुक्त हुआ होगा । अर्थववेद में लोहे की फाल तथा ताबीज का स्पष्ट प्रमाण मिलता है ।

लोहे सम्बन्धी साहित्यिक [17] उल्लेखों की पुष्टि पुरातात्विक प्रमाणों से भी हो जाती है। आलमगीरपुर, अतरंजीखेड़ा, मथुरा, रोपण, श्रावस्ती, कम्पिल्य आदि की खुदाइयों से लौह युगीन संस्कृति के अवशेष प्राप्त हुए, इस काल के लोग एक विशिष्ट प्रकार के बर्तन प्रयोग करते थे, जिसे चित्रित धूसर मृदभाण्ड[18] कहा जाता है, Painted Grey ware इन स्थानों से लोहे के औजार मिले हैं। अतरंजी खेड़ा से धातुशोधन करने वाली भट्टियाँ मिलती है। इस संस्कृति का समय ईसा पूर्व 1000 के लगभग निर्धारित किया गया है। पूर्वी भारत में सोनपुर, चिरांद आदि स्थानों से छेनी, कैंची आदि मिले हैं। मध्य भारत से एरण[19], नागदा, उज्जैन, कायथा[20] आदि से भी लौह उपकरण मिलते हैं। दक्षिण भारत के विभिन्न स्थानों से वृहत्पाषणिक कब्रे प्राप्त होती हैं।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में गंगा घाटी के नगरों में आपस में व्यापारिक लेन–देन तथा सांस्कृतिक समरूपता व्याप्त थी। नगरों में रहने वाले लोग NBPW (उत्तरी काली चमकीली पात्र परम्परा का उपयोग करते थे। यह उच्च कोटि की मृदभाण्ड परम्परा थी। इन्हें 'खरीपा नाम से सम्बोधित करते थे।

लौह प्रौद्योगिकी के विकास ने कला कौशल के बहुत से नये आयामों को जन्म दिया। दीर्घ निकाय तथा मज्झिम निकाय में रंगसाज तथा सूत्रग्रन्थों एवं जातकों में 'रजक' तथा 'रजकवीथि' का उल्लेख इस काल में वस्त्रोद्योग में आयी प्रगति का द्योतक है। जातकों में धातुकर्मी करीगर जिन्हें 'कर्मार' कहा जाता था। लौह धातु से उपकरण बनाने वाले लोहार प्राय' काम की तलाश में गाँव–गाँव घूमते थे। (कम्मा राणा यथा डक्का अतो इनायति नो बहि) गंगाघाटी के उत्तरी चमकीली ओपदार बर्तन, बाण, छेनी, फलक, कटार, चक्र, हसिया, खुरपी, कहाड़ी, कील, दीपक, हल तथा फाल आदि की प्राप्ति इस काल के लौह प्रौद्योगिकी के विकास का साक्ष्य प्रस्तुत करती है।

नगरीकरण को गतिशील बनाने में सिक्कों का सर्वप्रथम प्रचलन विशेष सहायक सिद्ध हुआ। ये सिक्के गंगाघाटी के NBPW मृदभाण्ड संस्कृति के मध्यवर्ती स्तरों से प्राप्त होते हैं। गंगा घाटी नगरों के उत्खनन में उत्तरी काली चमकीली मृदभाण्ड संस्कृति के मध्यवर्ती स्तरों से पकी ईंटो से बनाये गये भवनों के अवशेष मिले हैं। इनमें रक्षा प्राचीर तथा परिखा के अवशेष हमें हस्तिनापुर[28], कौशाम्बी, राजघाट, उज्जैन, बाहल, मथुरा, अतरंजीखेड़ा से प्राप्त हुए। दक्षिणी पूर्वी उत्तर प्रदेश में नवीन पुरातात्विक अनुसंधानों से लोहे की प्राचीनता पर नया प्रकाश डाला। ये प्रमाण इलाहाबाद जनपद के झूँसी, सोनभद्र, जनपद के राजनल का टीला[21], चन्दौली के मल्हार[22] से प्राप्त हुआ।

इस प्रकार विविध साक्ष्यों पर विचार करने के उपरान्त लोहे की प्राचीनता ऋग्वैदिक काल[23] तक ले जायी जा सकती हैं किन्तु वास्तविक लौह युग का प्रारम्भ उस समय से हुआ जब मनुष्य ने इस धातु का प्रयोग जंगलों की कटाई कर भूमि को कृषि योग्य बनाने तथा बस्तियां बसाने के लिए करना प्रारम्भ कर दिया।

(सन्दर्भ ग्रन्थ सूची)

1. संकालिया एच0डी0 : ''प्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री आफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान''
2. आलचिन टी0आर0एण्ड चक्रवर्ती डी0के0 : ''ए सोर्स बुक आफ इण्डियन आर्कियोलॉजी''।
3. भट्टाचार्य डी0के0; ''ओल्ड स्टोन ऐज टूल्स एण्ड देअर तकनीक''
4. अग्रवाल वासुदेवशरण; इण्डिया ऐज नोन टू पाणिनी पृष्ठ– 198–199
5. द्रष्टव्य सी0एच0आई0 भाग–1 अ0 8, पृष्ठ 203
6. जातक 6 पृष्ठ– 189
7. थपवल्याल के0के0; ''सिन्धु सभ्यता'' पृष्ठ 1–176
8. कल्चरल हेरिटेज ॐ पृष्ठ – 80

9. वैदिक इन्डेक्स, खण्ड–1 पृष्ठ–472

10. ऋग्वैदिक इण्डिया, पृष्ठ 187–199

11. वैदिक एज पृष्ठ–366

12. द्रष्टव्य ह्वीलर, ''दि इण्डस सिविलाईजेशन'' पृष्ठ 86

13. द्रष्टव्य, पृष्ठ–35

14. द्रष्टव्य, बी0बी0 लाल, ''पुरातत्व'' संख्या– 4, 1970–71, पृष्ठ 1–31

15. दास0 ए0सी0; ऋग्वैदिक इण्डिया जिल्द 1 कोलकाता

16. सम्पूर्णानन्द; ''आर्यो का आदिदेश,'' इलाहाबाद वि सं0 2010 पृष्ठ– 29

17. आर0 बिफाल्ट; 1962, पृष्ठ 59

18. ऋग्वेद, 2.27ण्9; 5.3.52; 6,66.2

19. सिंह यू0वी0 1962; ''एक्वेंशन ऐट एरण'' : जर्नल आफ मध्य प्रदेश इतिहास परिषद नं0–4 पृष्ठ 41–44

20. तिवारी, आर0 सिंह, जी0 सी0 एण्ड श्रीवास्तव ''प्राग्धारा''– नं0–5 पृष्ठ – 55–131

21. द्रष्टव्य प्राग्धारा नं0 –7 पृष्ठ 77–95

22. तिवारी, आर0आर0; श्रीवास्तव, के0; सिंह के0के0; 2000; एक्वेशन ऐट मल्हार, प्रा0 धारा– 10 च्च 69–98

23. प्राग्धारा नं0–10, पृष्ठ 23–30

24. बनर्जी एन0आर0 1965 ''आयरन ऐज इन इण्डिया'' नई दिल्ली।